मनोज शर्मा

बनाम

राज्य एवं अन्य

(दाण्डिक अपील संख्या 1619/2008)

16 अक्टूबर, 2008

(अल्तमस कबीर एवं मार्कण्डेय काट्जू, न्यायाधीषगण)

भारतीय संविधान 1950 का अनुच्छेद 226

प्रथम सूचना रिपोर्ट/दाण्डिक कार्यवाही उच्च न्यायालय द्वारा रद्द करने -. धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता/संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत जब पक्षकारान् द्वारा राजीनामा/निपटारा कर लिया हो - अवधारित किया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी शक्ति प्रयोग में लिये जाते समय द.प्र.सं. की धारा 320 बाधक नहीं है। - द.प्र.सं. की धारा 482/संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदान की गई शक्तियां विवेक पर आधारित है, जो प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों पर उपयोग में लायी जानी चाहिए। - तथ्यों के आधार पर प्रकरण में दाण्डिक कार्यवाही चलाया जाना निरर्थक है। अतः कार्यवाही रद्द की जाती है। - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 320 व 482.

सिद्धान्तः

''न्यायिक संयम'' व ''न्यायिक सक्रियतावाद'' का सिद्धान्त - लागू होना।

प्रश्न जो निर्धारण हेतु इस न्यायालय के समक्ष उत्पन्न हुआ है वह यह है कि क्या भा.द.सं. की धारा 471, 467, 420, 120बी सपठित धारा 34 के अंतर्गत दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट को द.प्र.सं. की धारा 482 अथवा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रद्द किया जा सकता है, जबकि मुल्जिम में परिवादी द्वारा मामले को राजीनामे के आधार पर आपस में निपटा लिया गया हो।

विपक्षी सरकार द्वारा यह कथन किया गया है कि द.प्र.सं. के अंतर्गत अपराधों के शमन के सम्बंध में विषिष्ट प्रावधानों के परिपेक्ष्य में जहां यह प्रावधित है कि कौनसे अपराध न्यायालय की अनुमति से या बिना न्यायालय की अनुमति से राजीनामे योग्य है, बी.एस. जोषी के मामले में पारित निर्णय को पुर्न विचार किया जाना आवष्यक है।

अपील स्वीकार करते हुये न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया अभिनिर्धारित (पर अल्तमस कबीर जे)

1.1 द.प्र.सं. की धारा 482 अथवा संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग प्रकरण के तथ्यों के आधार पर उसी

न्यायालय का स्वविवेक है, जिसके द्वारा उक्त शक्ति का प्रयोग किया जा रहा है। बी.एस. जोषी के मामले में यह बताया गया है कि उक्त शक्ति किसी भी परिस्थिति में द.प्र.सं. की धारा 320 में वर्णित प्रावधानों से बाधित नहीं है। यह न्यायालय न्याय के उक्त मत से संतुष्ट नहीं हो पा रहा है। (चरण-6)

बी.एस. जोषी व अन्य बनाम हरियाणा राज्य 2003 (4) एससीसी 675, जेटी 2003(3) एससी 277, एआईआर 2003 एससी 1386 - पर आधारित किया गया।

1.2 परिवाद में दर्षाये गये अपराधों की प्रकृति के आधार पर उसे उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त अपने क्षेत्राधिकार का उपयोग कर रद्द करना उचित नहीं समझा। - उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त क्षेत्राधिकार को प्रयोग में लेकर दाण्डिक कार्यवाही को रद्द किये जाने का निर्णय बिना किसी आधार के है। परिवादी द्वारा दर्ज करवाई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट से प्रकट होता है कि परिवादी एवं अभियुक्त के मध्य विवाद व्यक्तिगत प्रकृति का है। यह निर्विवाद है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पुलिस अधिकारियों के अनुसंधान का आधार है किन्तु पक्षकारान् के मध्य का विवाद व्यक्तिगत रह है। यदि परिवादी द्वारा एक बार प्रकरण को आगे चलाना नहीं चाहा तो उच्च न्यायालय को प्रकरण में व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाना अपेक्षित था। उच्च न्यायालय द्वारा मामले के तथ्यों को देखते हुये

अधिक व्यवहारिक दृष्टि से विचार किया जाना जान अपेक्षित था। (चरण 7 व 8)

1. इस प्रकरण के तथ्यों के आधार पर दाण्डिक कार्यवाही चलाया जाना निरर्थक है। अतः उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेष निरस्त कर अतिरिक्त मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के समक्ष लम्बित दाण्डिक कार्यवाही निरस्त की जाती है। (चरण 9 व 10)

मार्कण्डेय काट्जू, न्यायधीष द्वारा (सहमतीपूर्वक)

1.1 दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 को देखने से प्रकट होता है कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 468, 471, 34 सपठित धारा 120 बी, जो प्रष्नगत प्रथम सूचना रिपोर्ट में अंकित है, को न्यायालय की अनुमति से भी शमन नहीं किया जा सकता है। वास्तविकता में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 320(9) यह स्पष्ट करती है कि इस धारा के प्रावधानों के विपरीत किसी भी अपराध का शमन नहीं किया जा सकता है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित अपराध केवल मात्र 420 भा.द.सं. के आरोपों को छोड़कर शमन योग्य नहीं थे। द.प्र.सं. की धारा 320(9) के परिपेक्ष्य में भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत ऐसे कई अन्य प्रावधान है, जो न्यायालय की अनुमति से भी शमन नहीं किये जा सकते है। हालांकि इसके कारण आमजन को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था, जिस कारण इस न्यायालय द्वारा बी.एस. जोषी व अन्य बनाम हरियाणा राज्य के प्रकरण से एक

समाधान निकाला गया (चरण 10, 11 व 12)।

बी.एस. जोषी व अन्य बनाम हरियाणा राज्य 2003(4) एससीसी 675, जेटी 2003(3) एससी 277, एआईआर 2003 एससी 1386 - का हवाला दिया गया।

1.2 इस न्यायालय द्वारा स्वयं द्वारा पारित निर्णय कर्नाटका राज्य बनाम एल मुनी स्वामी 1977(2) एससीसी 699 अवधारित किया कि उच्च न्यायालय द.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत दाण्डिक कार्यवाही रद्द करने में सक्षम है, यदि वह इस नतीजे पर पहुंचे कि ऐसा करना न्यायहित में है। उदाहरणतः जहां दोष सिद्धी की कोई सम्भावना ना हो।(चरण 13)

बी.एस. जोषी व अन्य बनाम हरियाणा राज्य 2003(4) एससीसी 675, जेटी 2003(3) एससी 277, एआईआर 2003 एससी 1386 कर्नाटका राज्य बनाम एल मुनी स्वामी 1977 (2) एससीसी 699, माधवराव जीवाजी राव सिंधिया बनाम सभांजी राव चन्द्रोजी राव आंग्रे 1988 1 एससीसी 692, जी बी राव बनाम एल एच वी प्रसाद (2000) 3 एससीसी 693 एवं निखिल मर्चेन्ट बनाम कन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो व अन्य जेटी 2008 (9) एससी 192 - प्रस्तुत किये गये।

1.3 दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 यह स्पष्ट करती है किन अपराधों को शमन किया जा सकता है व किसे नहीं। उच्च न्यायालय तथा

यह न्यायालय भी साधारणतया अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा नहीं कर सकता, जो वह प्रत्यक्ष रूप से करने में सक्षम ना हो। दूसरे शब्दों में संविधान के अनुच्छेद 226 अथवा द.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत ऐसी न्यायिक शक्ति का उपयोग नहीं किया जा सकता, जो द.प्र.सं. के अंतर्गत स्पष्ट रूप से निषेध हो। (चरण 17)

1.4 द.प्र.सं. की धारा 320 को एकल रूप से नहीं पढ़ा जा सकता है। उक्त धारा को द.प्र.सं. की अन्य धाराओं जिसमें कि धारा 482 शामिल है, के साथ पढ़ा जाना आवष्यक है। धारा 482 में प्रयुक्त शब्द ''इस संहिता में कुछ भी नहीं दिया गया हैं एक प्रत्याषित खंड है, और जिसका द.प्र.सं. में अन्य प्रावधानों पर अधिभावी प्रभाव है।

1.5 यह सुस्थापित है कि न्यायालय के निर्णयों को यांत्रिक रूप से यूक्लिड सिद्धान्त की भांति नहीं पढ़ा जा सकता है। केवल विषेष परिस्थितियों में ही न्यायालय द्वारा धारा 482 द.प्र.सं. के सम्बंध में पारित विभिन्न निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धान्तों से विपरीत हुआ जा सकता है। (चरण-21)

मु. सिमरिखिया बनाम डोली मुखर्जी एआईआर 1990 एससी 1605 (चरण 2 व 4); आर.पी. कपूर बनाम पंजाब सरकार एआईआर 1960 एससी 866 (चरण 6); सरोज देवी बनाम प्यारे लाल व अन्य एआईआर 1981 एससी 736 (चरण 5); डाॅ. राजबीर सिंह दलाल बनाम चैधरी देवी

लाल विष्वविद्यालय 2008(8) जेटी 621; भारत पैट्रोलियम कार्पोरेषन लिमिटेड व अन्य बनाम एन.आर. वैरामनी व अन्य एआईआर 2004 एससी 4778 व निखिल मर्चेन्ट बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो व अन्य जेटी 2008(9) एससी 192 - प्रस्तुत किये गये।

1.6 इस न्यायालय द्वारा डिविजनल मैनेजर अरावली गोल्फ क्लब के प्रकरण में भी जहां पर भी न्यायिक संयम के सम्बंध में बल दिया गया है। यह वर्णित किया है कि कभी कभी न्यायालयों को भी न्यायिक सक्रियतावाद को आवष्यक होने पर प्रयोग में लिया जा सकता है, जब कि वह देष व समाज के हित में हो। (चरण-21)

डिविजनल मैनेजर, अरावली गोल्फ क्लब व अन्य बनाम चन्दर हास व अन्य जे.टी. 2008(3) एससी 221 एवं आन्द्रप्रदेष सरकार व अन्य बनाम श्रीमती पी. लक्ष्मी देवीजी (2008) 2 एससी 639- पर निर्भर किया गया।

ब्राउन बनाम बोर्ड आॅफ एजुकेषन 347 यू एस 483; मिरिण्डा बनाम अरिजोन्डा 384 यू एस 436; राॅय बनाम वाडे 410 यू एस 113 - का हवाला दिया गया।

2.1 यह कोई संदेह नहीं है कि धारा 302 भा.द.सं. का प्रकरण या अन्य गम्भीर अपराध जैसे कि धारा 395, 307 या 304 बी, के अपराधों

को शमन नहीं किया जा सकता है। अतः उक्त प्रावधानों में लम्बित दाण्डिक कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 द.प्र.सं. अथवा रिट क्षेत्राधिकार में राजीनामे के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है, हालाकि कुछ अन्य प्रकरण (जो सिविल प्रकृति के जैसे हो) की कार्यवाही उच्च न्यायालय द्वारा रद्द की जा सकती है, यदि पक्षकारों द्वारा आपसी सहमति से राजीनामा कर लिया गया हो, भले ही उक्त प्रावधान गैर शमनीय अपराध हो। (चरण-23)

2.2 प्रस्तुत मामले में दाण्डिक कार्यवाही निरस्त किये जाने योग्य है। किस प्रकार के गैर शमनीय अपराधों से सम्बंधित मामलों को धारा 482 द.प्र.सं. अथवा संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत पक्षकारों के मध्य राजीनामा हो जाने के आधार पर निरस्त किया जा सकता है, उक्त बिन्दु का निर्धारण किसी आगे आने वाले फेसले अथवा फैसलों में किया जाना चाहिए। (विषेषतया वृहद पीठ द्वारा)

2.3 बी.एस. जोषी के प्रकरण को इस प्रकार नहीं लेना चाहिए कि न्यायाधीषों द्वारा किसी भी प्रकार के फौजदारी प्रकरण को पक्षकारों के मध्य राजीनामा हो जाने के आधार पर निरस्त किया जा सकता है। आखिरकार कोई भी अपराध समाज के विरूद्ध होता है, ना कि केवल किसी व्यक्ति विषेष के (चरण-24)।

बी.एस. जोषी व अन्य बनाम हरियाणा राज्य (2003) 4 एससीसी

675 को आधारित किया गया है।

प्रकरण में प्रस्तुत न्यायिक दृष्टान्त

2003(4) एससीसी 675 -	हवाला दिया	चरण-12
जेटी 2003(3) एससी 277 -		
एआईआर 2003 एससी 1386		
2003 (4) एससीसी 675 -	निर्भर	चरण-12
जेटी 2003(3) एससी 277 -		
एआईआर 2003 एससी 1386		
1977 (2) एससीसी 699	निर्भर	चरण-13
1988 1 एससीसी 692	निर्भर	चरण-13
(2000) 3 एससीसी 693	निर्भर	चरण-13
जेटी 2008 (9) एससी 192	निर्भर	चरण-14
एआईआर 1990 एससी 1605	निर्भर	चरण-20
एआईआर 1960 एससी 866	निर्भर	चरण-20
एआईआर 1981 एससी 736	निर्भर	चरण-20

2008(8) जेटी 621	निर्भर	चरण-21
एआईआर 2004 एससी 4778	निर्भर	चरण-21
जेटी 2008 (9) एससी 192	निर्भर	चरण-14
जेटी 2008(3) एससी 221	निर्भर	चरण-16
347 यू.एस. 483	हवाला दिया	चरण-21
384 यू.एस. 436	हवाला दिया	चरण-21
410 यू.एस. 113	हवाला दिया	चरण-21
जेटी 2008 (2) एससी 639	निर्भर	चरण-16

दाण्डिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: दाण्डिक अपील संख्या 1619/2008

दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली द्वारा डब्ल्यू. पी. (सीआरएल) 1075/2007 द्वारा पारित अन्तिम निर्णय व आदेष दिनांक 17.08.2007.

अपीलार्थी की ओर से एच.के. चतुर्वेदी

प्रत्यर्थी की ओर से बी.बी. सिंह, सावित्री पाण्डेय एवं बी.एस. मेहरा

न्यायालय की ओर से निर्णय अल्तमस कबीर न्यायाधीष दिया गया।

अल्तमस कबीर, न्यायाधीष

1. अनुमति प्रदान की जाती है।

2. इस अपील के अंतर्गत इस बिन्दु का निर्णय किया जाना है कि क्या धारा 420/468/471/34/120बी भा.द.सं. के अंतर्गत दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट को धारा 482 द.प्र.सं. अथवा संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रद्द किया जा सकता है, जबकि परिवादी एवं मुल्जिम द्वारा मामले को आपसी सहमति से राजीनामा कर लिया गया हो।

3. इसी प्रकार का प्रष्न इस न्यायालय के समक्ष बी.एस. जोषी बनाम हरियाणा राज्य के प्रकरण में 2003(4) एससीसी 675 में यह उत्पन्न हुआ था कि क्या धारा 498ए व 406 भा.द.सं. के अंतर्गत दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद या फौजदारी कार्यवाही, जो कि पत्नि द्वारा संस्थित की गई है, को धारा 482 द.प्र.सं. के अंतर्गत रद्द किया जा सकता है, जबकि आरोपित अपराध अधिनियम की धारा 320 के अंतर्गत गैर शमनीय हो। उक्त प्रकरण में उठाई गई आपत्ति को श्री बी.बी. सिंह विद्वान अधिवक्ता प्रत्यर्थी राज्य सरकार द्वारा भी उठाया गया है।

4. बी.एस. जोषी के प्रकरण में इस न्यायालय द्वारा धारा 320 के अंतर्गत शमन किये जाने वाले अपराधों एवं धारा 482 द.प्र.सं. व अनुच्छेद 226 संविधान के अंतर्गत रद्द किये जाने वाले परिवाद अथवा दाण्डिक कार्यवाही के बीच अन्तर बताया गया है। यह इंगित किया गया है कि उक्त प्रकरण में अपीलार्थी द्वारा अपराधों को शमन करने की प्रार्थना नहीं की गई

थी, चूंकि वह अपराध क्षमा योग्य नहीं थे। इस न्यायालय द्वारा पूर्व में पेप्सी फूड लिमिटेड बनाम विषिष्ट न्यायिक मजिस्ट्रेट (1998 (5) एससीसी 749) में पारित निर्णय में यह अवधारित किया था कि अधिनियम की धारा 482 का क्षेत्राधिकार प्रयोग में लेते हुये न्यायालय ना तो लचीला, ना ही सख्त फार्मूला अपनाया जाना है। उक्त शक्ति का प्रयोग प्रत्येक प्रकरण के तथ्य एवं परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए, किन्तु उसका उद्देष्य किसी भी न्यायालय की कार्यवाही का दुर्पयोग रोकना अथवा न्याय प्राप्ति होना चाहिए। यह भी अवधारित किया गया कि स्वीकृत रूप से उक्त शक्ति का प्रयोग करने में रोक नहीं है, किन्तु उसका प्रयोग विषेष सावधानी से किया जाना अपेक्षित है। तद्नानुसार विद्वान न्यायधीषगणों द्वारा यह अवधारित किया गया है कि दाण्डिक कार्यवाही अथवा प्रथम सूचना रिपोर्ट को अधिनियम की धारा 482 के अंतर्गत रद्द किये जाने की शक्ति दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 से प्रभावित नहीं होती है।

5. यहां अपीलार्थी द्वारा बी.एस. जोषी के प्रकरण में पारित निर्णय पर अत्यधिक बल दिया गया है। प्रत्यर्थी राज्य सरकार की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री बी.बी. सिंह द्वारा यह निवेदन किया गया है कि अधिनियम के अंतर्गत अपराधों को शमन किये जाने बाबत् विषिष्ट प्रावधान होने, जिसके अंतर्गत यह बताया गया है कि किस प्रकार के अपराधों को न्यायालय की अनुमति अथवा बिना अनुमति के शमन किया जा सकता है,

बी.एस. जोषी के प्रकरण में पारित निर्णय पर पुर्नविचार आवष्यक है। श्री सिंह द्वारा इस न्यायालय द्वारा पारित इस्पेक्टर आॅफ पुलिस, सी.बी.आई. बनाम राजा गोपाल (2002 (9) एससीसी 533), के.जी. प्रेमषंकर बनाम इंसपेक्टर आॅफ पुलिस व अन्य (जे.टी. 2002(7) एससी 30) व टैक्सटाईल लेबर एसोसिएषन व अन्य बनाम आॅफिसर लिक्विडेटर व अन्य (जे.टी. 2004 (सप्लीमेन्ट-1) एससी 1), के प्रकरणों को आधार बनाते हुये बहस की गई की बी.एस. जोषी के प्रकरण में उपरोक्त दोनों प्रकरणों में दिये गये मतों के विपरीत कार्यवाही की गई है।

6. हमारे द्वारा गम्भीरता से पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत बहस व प्रकरण के तथ्यों पर विचार किया गया एवं हम श्री सिंह की इस बात से सहमत नहीं है कि बी.एस. जोषी के प्रकरण पर पुर्नविचार आवष्यक है, कम से कम इस प्रकरण के सम्बंध में तो नहीं। बी.एस. जोषी के प्रकरण में गैर शमनीय अपराधों को धारा 482 द.प्र.सं. अथवा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रद्द किये जाने वाली शक्तियों के बारे में निर्णित किया गया था। किसी भी दाण्डिक कार्यवाही अथवा प्रथम सूचना रिपोर्ट अथवा परिवाद, भले ही वह शमनीय हो अथवा नही, को उच्च न्यायालय द्वारा अपनी शक्तियों को उपयोग में लेकर रद्द किया जा सकता है, यही कानूनी बिन्दु उक्त प्रकरण में निर्णित किया गया है। धारा 482 द.प्र.सं. अथवा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उक्त शक्ति को प्रयोग

में लेने का विवेेक प्रकरण के तथ्यों के आधार पर केवल मात्र उसी न्यायालय को है। यह प्रकट किया गया है कि उक्त शक्ति किसी भी प्रकार से धारा 320 द.प्र.सं. के अंतर्गत प्रदान की गई शक्ति से बाधित नहीं हैं, काूनन के उक्त मत से हम असहमत नहीं है। वैसे भी इस प्रकरण के सम्बंध में हमें केवल मात्र यह विचार करना है कि उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 द.प्र.सं. के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार को विधिक व सही रूप से प्रयोग में लिया गया है।

7. परिवाद में वर्णित किये गये अपराधों की प्रकृति को देखते हुये उच्च न्यायालय द्वारा इसमें संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत निहित शक्तियों को प्रयोग में लेकर रद्द किये जाने लायक मामला नहीं पाया गया।

8. हमारे मत में उच्च न्यायालय का संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों के अधीन दाण्डिक कार्यवाही रद्द किये जाने बाबत् उच्च न्यायालय का इनकार किया जाना बिना किसी आधार के है। परिवादी द्वारा दर्ज करवाई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि परिवादी एवं अभियुक्त के मध्य विवाद व्यक्तिगत प्रकृति का है। निर्विवादित रूप से यह प्रथम सूचना रिपोर्ट पुलिस द्वारा किये जाने वाले अनुसंधान का आधार है, लेकिन पक्षकारों के मध्य उत्पन्न विवाद व्यक्तिगत प्रकृति का ही रहा है। जब एक बार परिवादी द्वारा प्रकरण में आगे कार्यवाही नहीं करना चाहा है, तो उच्च न्यायालय से एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाना

अपेक्षित था। हम यह सलाह नहीं देते कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त अपनी शक्तियों को प्रयोग में लेते हुये उच्च न्यायालय प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने से इनकार ही नहीं कर सकता है, किन्तु हम यह अपेक्षा करते है कि मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुये उच्च न्यायालय से अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपेक्षित था। हमारे द्वारा पूर्व में यह इंगित किया गया है कि धारा 482 द.प्र.सं. अथवा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति विवेक पर आधारित है, जो प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों के आधार पर प्रयोग में ली जानी चाहिए।

9. प्रस्तुत मामले के तथ्यों के आधार पर दाण्डिक कार्यवाही आगे चलाया जाना निरर्थक है।

10. तद्नानुसार हमारे द्वारा अपील स्वीकार कर उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेष निरस्त कर दाण्डिक कार्यवाही, जो विद्वान अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, कडकडडूमा न्यायालय, दिल्ली के समक्ष प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 50/1997 दिनांक 31.01.1997, पुलिस थाना, विवेक विहार (पूर्व दिल्ली), के सम्बंध में लम्बित है, को निरस्त किया जाता है।

मार्कण्डेय काट्जू, न्यायाधीष 1. मैंने मेरे विद्वान भ्राता माननीय न्यायाधीष कबीर द्वारा दिये गये निर्णय को पढ़ा एवं मैं सम्मान पूर्वक उनके द्वारा दिये गये नतीजे से सहमत हूं कि अपील स्वीकार किये जाने योग्य है तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं दाण्डिक कार्यवाही,

जो विद्वान अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, कडकडडूमा न्यायालय, दिल्ली के समक्ष प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 50/1997 दिनांक 31.01.1997, पुलिस थाना, विवेक विहार (पूर्व दिल्ली), के सम्बंध में लम्बित है, को निरस्त जाना चाहिए।

2. किन्तु प्रकरण में अन्तरलिप्त बिन्दु की महत्ता को देखते हुये मैं पृथक से सहमतीपूर्वक निर्णय देना चाहता हूँ।

3. इस प्रकरण में यह प्रष्न है कि क्या धारा 420/468/471/34/ 120बी भा.द.सं. के अंतर्गत दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट को द.प्र.सं. की धारा 482 अथवा संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रद्द किया जा सकता है, जबकि अभियुक्त एवं परिवादी द्वारा मामले को आपस में राजीनामे के आधार पर निपटा लिया हो।

4. प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाये गये आरोप निम्न प्रकार से हैः-

‘‘संजयपाल पुत्र महेन्द्र सिंह पाल, निवासी ए-25, झिलमिल काॅलोनी, विवेक विहार, दिल्ली द्वारा अपने बयान में कथन किया गया है कि मैं उपरोक्त पते पर अपने परिवार के साथ निवास करता हूं। मेरे द्वारा दो साल पूर्व श्री मनोज कुमार शर्मा - विजय लक्ष्मी फाईनेन्स एण्ड इनवेस्टमेन्ट कम्पनी से मारूति वैन पंजीयन क्रमांक डीएल-1सीबी-4065 राषि 30,000/-रूपये के प्रतिफल में फाईनेन्स करवाई गई थी। मेरे द्वारा प्रथम

किष्त राषि 3954/-रूपये जमा करवाये गये थे। तत्पष्चात् श्री मनमोहन शर्मा, निवासी डी-131, झिलमिल काॅलोनी मेरे पास आये और कहा कि तुम्हारा फाईनेन्स फर्जी है, इसी कारण मेरे द्वारा तुम्हारे वाहन को रियल आॅटो डील्स, जो मेरे जीजा द्वारा चलाया जाता है, से फाईनेन्स करवाया गया। आप द्वारा दिया गया भुगतान व आपसी फाईन मुझे प्राप्त हो चुकी है। उसके द्वारा मुझे पहली आरसी लौटाने को कहा। उसके द्वारा मुझे नई आरसी प्रदान की गई। मेरे द्वारा उसे पुरानी आरसी लौटाई गई। उसके द्वारा मुझे बताया गया कि अब तुम्हारे वाहन का फाईनेन्सर रियल आॅटो डील्स है। मुझे आष्चर्य हुआ कि किस प्रकार बिना किसी फार्म व कागज पर हस्ताक्षर किये वाहन हस्तान्तरित हो गया। मनमोहन शर्मा प्रत्येक माह मुझसे किष्ते नकद में प्राप्त करता था। मुझे जारी की गई रसीदों पर ना तो रियल आॅटो डील्स का लेटर हैड और ना ही रबर स्टाम्प लगी हुई थी। मेरे से प्राप्त चैकों को रियल आॅटो डील्स के खाते में जमा न करवाकर भिन्न-भिन्न नामों से भुनाया गया था। जब मुझे इस बात की जानकारी हुई कि वह मुझसे फर्जीवाड़ा कर रहा है, तो मैंने बैंक जाकर चैकों का भुगतान रूकवा दिया। चैक अनादरित होने पर वह मेरे पास आया और कहा कि मेरे द्वारा भुगतान क्यों रूकवाया गया। मैंने कहा कि मेरे द्वारा तुम्हें पहले ही नोटिस यह कहकर भिजवाया है कि मेरे द्वारा किष्तों का भुगतान रियल आॅटो डील्स के नाम से किया जायेगा पर चूंकि तुम ऐसा नहीं कर रहे हो, इस कारण मेरे द्वारा भुगतान रूकवाया गया, तत्पष्चात् दिनांक

27.12.1995 को करीब 10.00 बजे वह मेरे पास झिलमिल एक अज्ञात व्यक्ति के साथ आया, जिसे मैं मेरे पास आने पर पहचान सकता हूँ, उसके साथ मेरी मारूति वैन बिना मेरी सहमति के बिना पुलिस की मोहर लगे कागज को दिखाये, ले गये। विजयलक्ष्मी फाईनेन्स, रियल आॅटो डील्स व मनमोहन शर्मा द्वारा एक षड़यंत्र के तहत मेरे वाहन को किसी अन्य जगह, मेरे फर्जी हस्ताक्षर कर मुझसे छलकर बेच दिया है। उक्त सभी के विरूद्ध उचित कानूनी कार्यवाही की जावे। बयान सुनकर सही होना पाया, एसडी अंग्रेजी संजयपाल 31.01.1997 प्रमाणित हस्ताक्षर एसडी अंग्रेजी सत्यानारायण एएसआई 31.01.1997''

5. प्रथम सूचना रिपोर्ट को देखने से प्रकट होता है कि अपीलार्थी पर यह आरोप थे कि उसके द्वारा वाहन से सम्बंधित दस्तावेजों में फर्जकारी कर धोखाधड़ी की तथा परिवादी से प्राप्त चैकों को वाहन के फाईनेन्स के सम्बंध में विभिन्न खातों में जमा करवा दिया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी आरोपित किया गया है कि अपीलार्थी द्वारा परिवादी के वाहन को फर्जी हस्ताक्षर बनाकर किसी अन्य को विक्रय कर दिया तथा परिवादी के साथ छल किया।

6. उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर अपीलार्थी व सहअभियुक्त मनमोहन शर्मा के विरूद्ध आरोप लगाये गये।

7. अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम सूचना रिपोर्ट को

रद्द करवाने के सम्बंध में रिट याचिका इस आधार पर प्रस्तुत की कि मामले में परिवादी व अभियुक्त का राजीनामा हो चुका है। उक्त रिट याचिका में परिवादी द्वारा इस आषय का शपथ पत्र प्रस्तुत किया गया कि उनके मध्य हुए राजीनामे के आधार पर वह दोनों रिट याचीगण के विरूद्ध लगाये आरोप वापिस लेता है तथा वह प्रथम सूचना रिपोर्ट को भी वापिस लेता है। आपसी राजीनामे के अंतर्गत 45,000/-रूपये अपीलार्थी मनोज शर्मा व 45,000/-रूपये सहअभियुक्त मनमोहन शर्मा को अदा किया जाना तय हुआ।

8. हालाकि दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय दिनांक 17.08.2007 से रिट याचिका निरस्त कर दी गई, अतः यह अपील।

9. यह वर्णन करना आवष्यक होगा कि धारा 320(1) द.प्र.सं. के अंतर्गत भारतीय दण्ड संहिता के कुछ अपराधों को उक्त व्यक्तियों द्वारा, जिनका वर्णन उक्त प्रावधान की सारणी में 3 नम्बर कालॅम में दर्षित है, शमन किया जा सकता है।

धारा 320(2) के प्रावधानों के अनुसार कुछ अन्य अपराधों को न्यायालय की अनुमति से शमन किया जा सकता है, किन्तु धारा 320(9) में स्पष्ट रूप से यह अंकित है कि:-

"इस धारा में वर्णित के अलावा किसी अपराध को शमन

नहीं किया जा सकता है।''

10. धारा 320 को देखने मात्र से यह स्पष्ट है कि धारा 468, 471, 34 एवं 120 भा.द.सं. (जो प्रष्नगत प्रथम सूचना रिपोर्ट में अंकित है) के अपराधों को न्यायालय की अनुमति से भी शमन न हीं किया जा सकता है। वास्तविकता में धारा 320(9) द.प्र.सं. यह स्पष्ट करती है कि इस प्रावधान के अलावा किसी अपराध को शमन नहीं किया जा सकता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि धारा 420 भा.द.सं., जिसे न्यायालय की अनुमति के आधार पर धारा 320(2) के अंतर्गत शमन किया जा सकता है, के अलावा प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित अन्य अपराधों को न्यायालय की अनुमति से भी शमन नहीं किया जा सकता है। इस आधार पर प्रथमदृष्टया यह कहा जा सकता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित अपराध केवल धारा 420 भा.द.सं. के आरोपों को छोड़कर शमन योग्य नहीं थे।

11. भारतीय दण्ड संहिता में वर्णित कुछ अन्य प्रावधान जैसे धारा 498ए, जो जाहिरा तौर पर भी धारा 320(9) द.प्र.सं. के प्रावधानों के परिप्रेक्ष्य में न्यायालय की अनुमति से शमन नहीं किये जा सकते।

12. लेकिन उक्त कारण से आमजन को काफी कठिनाई व परेषानी का सामना करना पड़ रहा था। अतः इस न्यायालय द्वारा बी.एस. जोषी व अन्य बनाम हरियाणा राज्य, 2003(4) एस.सी.सी. 675 (जेटी 2003(3) एससी

277 - एआईआर 2003 एस सी 1386) उक्त प्रकरण में न्यायालय द्वारा पूर्व में स्वयं पारित निर्णय मधु लिमाये बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1977(4) एससीसी 551, जिसके अंतर्गत यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 482 की शक्ति का प्रयोग वहां नहीं करना चाहिए जहां किसी अन्य प्रावधान के अंतर्गत स्पष्ट रोक हो। बी.एस. जोषी (उपरोक्त प्रकरण) में इस न्यायालय द्वारा सुरेन्द्र नाथ मोहन्ती बनाम उडीसा राज्य एआईआर 1999 एससी 2181 का हवाला दिया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि धारा 326 भा.द.सं. का अपराध शमनीय नहीं है। अतः उच्च न्यायालय उक्त अपराध का शमन नहीं कर सकता है।

13. उपरोक्त निर्णयो के बावजूद इस न्यायालय ने बीएस जोषी के मामले (उपरोक्त) में अपने निर्णय कर्नाटक राज्य बनाम एल मुनिस्वामी, (4 1997 (2) एससीसी 699, पर निर्भर करते हुए पाया कि उच्च न्यायालय सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आपराधिक कार्यवाही रद्द कर सकता है, यदि वह इस नतीजे पर पहुंचे कि न्याय की प्राप्ति हेतु ऐसा आवष्यक हो। उदाहरणतः जहां दोषसिद्धि की कोई संभावना न हो। भा.द.सं. की धारा 498ए के तहत एक मामले में यदि पक्षकार राजीनामा कर लेते हैं तो अंतिम दोषसिद्धि की संभावना ना के बराबर रह जाती है। ऐसी परिस्थिति में आपराधिक कार्यवाही जारी रखे जाने से कोई उपयोगी उद्देष्य पूरा नहीं होगा। इसलिये उन्हें द.प्र.सं. की धारा 482 की षक्ति के अंतर्गत

रद्द कर दिया जाना चाहिये। न्यायालय द्वारा माधवराव जीवाजीराव सिंधिया बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे, 1988 (1) एससीसी 692, जीवी राव बनाम एलएचवी प्रसाद, (2000) 3 के निर्णयों में भी समान दृष्टिकोण लिये जाने के कारण निर्भर किया गया।

14. बीएस जोषी के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने समस्या का रचनात्मक समाधान निकाला और द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत अपनी षक्ति का प्रयोग करते हुए कार्यवाही को रद्द कर दिया। उक्त निर्णय को इस न्यायालय द्वारा निखिल मर्चेन्ट बनाम केन्द्रीय जांच ब्यूरो और अन्य, जेटी 2008 (9) एससी 192 में पालन किया गया।

15. श्री बी.बी. सिंह विद्वान अधिवक्ता प्रत्यर्थी द्वारा यह कहा गया कि ना तो उच्च न्यायालय और ना ही इस न्यायालय द्वारा फौजदारी कार्यवाही को जबकि अपराध द.प्र.सं. की धारा 320 के अंतर्गत स्पष्ट रूप से गैर षमनीय बनाया गया है, तो पक्षकारों के मध्य राजीनामे के उपरान्त भी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का निर्देश देना उचित नहीं होगा। उन्होंने आग्रह किया कि न्यायालय इस विषय से संबंधित किसी भी मूल वैधानिक प्रावधान की अनदेखी नहीं कर सकता है और कानून के उल्लंघन मे कोई रिट या निर्देष जारी नहीं कर सकता है।

16. सामान्यतः हम श्री बी.बी. सिंह से सहमत होते। न्यायिक संयम के सिद्धांत पर इस न्यायालय द्वारा बार-बार जोर दिया गया है, उदाहरण के

लिए डिविजनल मैनेजर, अरावली गोल्फ क्लब व अन्य बनाम चंदर हास और अन्य, जेटी 2008 (3) एससी 221, आंध्र प्रदेश सरकार व अन्य बनाम श्रीमती पी. लक्ष्मी देवी जेटी 2008 (2) एससी 639 न्यायालय की शक्ति को प्रतिबंधित करता है और न्यायालय को सामान्यतः विधायिका और कार्यपालिका क्षेत्र में अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं देता है। जैसा कि इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णयों में देखा, संविधान में षक्तियों का व्यापक पृथक्करण है और राज्य के एक अंग को दूसरे अंग के क्षेत्र में अतिक्रमण करना उचित नहीं होगा।

17. चूंकि द.प्र.सं. की धारा 320 में स्पष्ट किया गया है कि कौन से अपराध राजीनामे योग्य है और कौन से नहीं, उच्च न्यायालय या यहां तक कि इस न्यायालय को सामान्यतः अप्रत्यक्ष रूप से कोई कार्य करना उचित नहीं होगा, जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता है, अन्यथा भी यह सामान्यतः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत या द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत न्यायिक षक्ति का वैध प्रयोग नहीं होगा, जिससे कुछ ऐसा करने का निर्देष दिया जा सके, जिसे द.प्र.सं. ने स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित किया हो। द.प्र.सं. की धारा 320(9) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उस धारा में दिए गए प्रावधान के अलावा किसी भी अपराध का षमन नहीं किया जाएगा। इसलिए मेरी राय में किसी गैर-षमनीय अपराध के षमन का निर्देश देना आमतौर पर न्यायिक षक्ति का वैध प्रयोग नहीं

होगा।

18. हालांकि, यह इंगित किया गया है कि द.प्र.सं. की धारा 320 को पृथक से नहीं पढ़ा जा सकता है। इसे द.प्र.सं. के अन्य प्रावधानों के साथ पढ़ा जाना चाहिए। ऐसा ही एक अन्य प्रावधान द.प्र.सं. की धारा 482 है, जो निम्न प्रकार से हैः

> "उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित षक्तियों की व्यावृत्ति - इस संहिता की कोई बात उच्च न्यायालय की ऐसे आदेष देने की अन्तर्निहित षक्ति को सीमित या प्रभावित करने वाली न समझी जाएगी जैसे इस संहिता के अधीन किसी आदेष को प्रभावी करने के लिये या किसी न्यायालय की कार्यवाही का दुरूपयोग निवारित करने के लिये या किसी अन्य प्रकार से न्याय के उद्धेष्यों की प्राप्ति सुनिष्चित करने के लिये आवष्यक हो।"

19. धारा 482 में प्रयुक्त शब्द ''इस संहिता में कुछ भी नहीं दिया गया " , और जिसका द.प्र.सं. में अन्य प्रावधानों पर अधिभावी प्रभाव है। धारा 482 में ''न्याय के हित को सुरक्षित करने के लिए या किसी अन्य प्रकार से न्याय के उद्धेष्यों की प्राप्ति सुनिष्चित करने के लिये आवष्यक है'' शब्द का तात्पर्य है कि न्याय के हित को सुरक्षित रखने के लिए कभी-कभी (हालांकि केवल बहुत ही दुर्लभ मामलों में) उच्च

न्यायालय द.प्र.सं. के प्रावधान का उल्लंघन करते हुए आदेश पारित कर सकता है।

20. यह सच है कि इस न्यायालय के कुछ निर्णयों में यह अवधारित किया गया है कि द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग ऐसा कुछ करने के लिए नहीं किया जा सकता है जो सहिता में स्पष्ट रूप से वर्जित है। सिमरिखिया बनाम डाॅली मुखर्जी, एआईआर 1990 एससी 1605 (पैरा 2 और 4 के अनुसार), आरपी कपूर बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1960 एससी 866 (पैरा 6 के अनुसार), सूरज देवी बनाम प्यारे लाल और अन्य एआईआर 1981 एमसी 736 (पैरा 5 के अनुसार) आदि के जरिये।

21. हालांकि, मेरी राय में इन निर्णयों को युक्लिड के फाॅर्मूले के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है क्योंकि यह सुस्थापित है कि किसी न्यायालय के निर्णयों को यत्रवत् और युक्लिड के फाॅर्मूले की तरह नहीं पढ़ा जा सकता है। डाॅ. राजबीर सिंह दलाल बनाम चैधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, 2008 (8) जेटी. 621. भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम एनआर वैरामानी और अन्य एआईआर 2004 एससी 4778। दुर्लभ और असाधारण मामलों में संदर्भित निर्णयों के निर्धारित सिद्धांत से विचलन किया जा सकता है, जैसा कि पैरा 20 बीएस जोशी के मामले (उपरोक्त) में देखा गया है, जिसका पालन अन्य निर्णयों जैसे

निखिल मर्चेंट के मामले (उपरोक्त) में भी किया गया है। यहां तक कि डिविजनल मैनेजर अरावली गोल्फ क्लब (उपरोक्त) में भी न्यायिक संयम पर बल देते हुये कहा गया है, किया गया था। यहा तक कि डिविजनल मेनेजर अरावली गोल्फ क्लब (उपरोक्त) में इस न्यायालय के फैसले में न्यायिक संयम पर जोर दिया गया है. यहां यह उल्लेख किया गया है कि कभी-कभी न्यायालय द्वारा न्यायिक सक्रियता का सहारा लिया जा सकता है, जहां स्थिति के अनुसार देष व समाज के हित में इसकी आवश्यकता होती है (उक्त निर्णय के पैरा 39 के अनुसार)। ब्राउन बनाम बोर्ड ऑफ एजुकेशन, 347 यूएम 483, मिरांडा बनाम एरिजोना 384 यूएस 436, रो बनाम वेड, 410 यूएस 113, आदि में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट द्वारा और लॉर्ड डेनिंग द्वारा इंग्लैंड में अपने कई निर्णयों में न्यायिक सक्रियता का उचित सहारा लिया गया था।

22. जबकि वर्तमान मामले में मैं अपने विद्वान भ्राता माननीय कबीर जे. से आदरपूर्वक सहमत हूं कि आपराधिक कार्यवाही रद्द की जानी चाहिए, इस प्रश्न को बाद के कुछ निर्णयों या निर्णयों (अधिमानतः एक वृहद पीठ द्वारा) में तय करना पड़ सकता है जिसमें गैर-शमनीय मामलों को द.प्र.सं. की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि पक्षकारों ने समझौता कर लिया है।

23. इसमें कोई संदेह नहीं है कि भा.द.सं. की धारा 302 या धारा

395, 307 या 304 बी जैसे अन्य गंभीर अपराधों के तहत मामलो में समझौता नहीं किया जा सकता है और इसलिए धारा 482 द.प्र.सं. के तहत या समझौते के आधार पर रिट क्षेत्राधिकार में अपनी शक्ति का प्रयोग करके उच्च न्यायालय उन प्रावधानों में कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकता है। हालांकि, कुछ अन्य मामलों में, (जैसे कि सिविल प्रकृति के मामले) कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है यदि पक्षकार सौहार्दपूर्ण राजीनामे पर आ गए हैं, भले ही प्रावधान राजीनामे योग्य न हो। जिन मामलों में एक रेखा खींचनी है उसका निर्णय इस न्यायालय के कुछ बाद के निर्णयों में करना होगा, अधिमानतः एक वृहद पीठ द्वारा (ताकि इसे और अधिक आधिकारिक बनाया जा सके)। इस संबंध में कुछ दिशानिर्देश विकसित करने होंगे और मामले को न्यायाधीषों के अकेले स्वविवेक पर नहीं छोड़ा जा सकता है, अन्यथा परस्पर विरोधी निर्णय और न्यायिक अराजकता उत्पन्न हो सकती है। न्यायिक विवेक का प्रयोग कुछ वस्तुनिष्ठ मार्गदर्शक सिद्धांतों और मानदंडों पर किया जाना चाहिए, न कि न्यायाधीशों की व्यक्तिगत सनक और इच्छा पर। आखिरकार, विवेक चांसलर के कदमों के समान नहीं हो सकता।

24. मैं यह राय इसलिए व्यक्त कर रहा हूं क्योंकि प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.बी. सिंह ने सही ही अपनी चिंता व्यक्त की है कि बी. एस. जोशी के मामले (उपरोक्त) में निर्णय का यह अर्थ नहीं समझा जाना चाहिए

कि न्यायाधीश किसी भी प्रकार के आपराधिक मामले को केवल इसलिए रद्द कर सकते हैं कि पक्षकारों के बीच समझौता हो गया है। आखिरकार, अपराध समाज के विरुद्ध अपराध है, न कि केवल किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध।

25. इन टिप्पणियों के साथ, मैं सम्मानपूर्वक अपने विद्वान भ्राता माननीय कबीर जे. से सहमत हूं कि इस अपील को स्वीकार किया जाना चाहिए और विचाराधीन आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जाना चाहिए।

अपील स्वीकृत

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी ..... (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।